नईदुनिया

संपादकीय

रटंत का अंतः 9वीं से होलिस्टिक प्रोग्रेस कार्ड, अब नंबर नहीं हुनर बोलेगा मध्यप्रदेश

के स्कूलों में शिक्षा की तस्वीर बदलने वाली है। सरकार ने कक्षा 9वीं से मूल्यांकन का नया ढांचा लागू करने का फैसला किया है। अब साल के अंत में एक परीक्षा के नंबर ही बच्चे की किस्मत तय नहीं करेंगे, बल्कि पूरे साल की सीख, प्रोजेक्ट, गतिविधि और कौशल को मिलाकर होलिस्टिक प्रोग्रेस कार्ड बनेगा। यह बदलाव उस सोच पर चोट है, जो मानती है कि शिक्षा का मतलब किताब रटो, पेपर दो और नंबर ले आओ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने कहा था कि बच्चों को रटने की मशीन नहीं बनाना है, उन्हें सोचने, समझने और समस्या सुलझाने वाला बनाना है। लेकिन जमीनी हकीकत अलग थी। 9वीं और 11वीं जैसी कक्षाओं में भी बच्चे साल भर कोचिंग के भरोसे रहते थे, क्योंकि असली खेल मार्च की परीक्षा में था। एक खराब दिन पूरे साल की मेहनत पर पानी फेर देता था। इसी तनाव को तोड़ने के लिए यह कार्ड लाया जा रहा है।

इस नए कार्ड में सिर्फ लिखित परीक्षा नहीं होगी। इसमें कक्षा में भागीदारी, समूह में काम करने का तरीका, प्रोजेक्ट की प्रस्तुति, संवाद, कला, खेल और नैतिक मूल्य भी जुड़ेंगे। शिक्षक हर तीन महीने में बच्चे की प्रगति दर्ज करेंगे और माता-पिता को बताएंगे कि बच्चा कहां मजबूत है और कहां मदद चाहिए। अब बच्चा स्कूल को परीक्षा हॉल नहीं, बल्कि सीखने की प्रयोगशाला मानेगा।

21वीं सदी में नौकरियां भी बदल रही हैं। कंपनियां और कॉलेज अब सिर्फ 90 प्रतिशत अंक नहीं देखते। वे पूछते हैं कि टीम में काम कैसे करते हो, नया आइडिया कैसे लाते हो और दबाव में कैसे निर्णय लेते हो। जब बच्चा 9वीं से ही प्रोजेक्ट करेगा, समूह में बहस करेगा और अपनी बात रखेगा, तो वह आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ेगा।

लेकिन सबसे पहली चुनौती शिक्षकों की है। होलिस्टिक कार्ड का मतलब है हर बच्चे को व्यक्तिगत रूप से देखना, हर गतिविधि को परखना और रिपोर्ट बनाना। ग्रामीण और आदिवासी इलाकों के स्कूलों में, जहां एक शिक्षक पर 60 से 70 बच्चे हैं, वहां यह बोझ बढ़ जाएगा। इसलिए सरकार को शिक्षक भर्ती और प्रशिक्षण पर तुरंत काम करना होगा। बिना प्रशिक्षण के यह योजना कागज पर ही रह जाएगी।

संसाधनों में भी असमानता है। निजी स्कूलों में स्मार्ट क्लास, लैब और गतिविधियों के लिए पैसा है, लेकिन सरकारी स्कूलों में आज भी बेंच-डेस्क और बिजली की समस्या है। अगर दोनों तरह के स्कूलों में मूल्यांकन एक जैसा होगा, तो असमानता बढ़ेगी। सरकार को हर स्कूल को न्यूनतम संसाधन देना होगा, ताकि हर बच्चे को बराबर अवसर मिले।

हमारी मानसिकता भी बदलनी होगी। आज भी अधिकांश अभिभावक पूछते हैं, कितने नंबर आए, रैंक क्या आई? अगर प्रोग्रेस कार्ड में लिखा होगा कि बच्चा नेतृत्व में अच्छा है, लेकिन गणित में औसत है, तो क्या अभिभावक इसे स्वीकार करेंगे? स्कूलों में पैरेंट्स मीटिंग और कार्यशालाएं हों, ताकि माता-पिता समझें कि भविष्य अंकों से नहीं, कौशल से बनेगा। यह आसान बदलाव नहीं है। रटंत का जमाना गया। अब जमाना है सीखने, समझने और बनने का।

आजकल

बुलडोजर राज खत्म, अब चलेगा कानून का डंडा

घर गिराने से पहले सुनवाई जरूरी

सुप्रीम कोर्ट ने बुलडोजर कार्रवाई को लेकर सख्त टिप्पणी की है। पिछले कुछ वर्षों से चल रहे खतरनाक चलन पर विराम लगाने की कोशिश की है। कोर्ट ने साफ कहा कि किसी के घर पर बुलडोजर चलाने से पहले कानून का पालन हो, नोटिस दिया जाए, सुनवाई हो और फिर कार्रवाई हो। धमकी देकर या दंड के तौर पर घर गिराना संविधान की मूल भावना के खिलाफ है।

अवैध अतिक्रमण बड़ी समस्या है। सरकारी जमीन, नदी, सड़क और पार्क की जगह पर बेधड़क निर्माण हो रहा है। इससे जाम, बाढ़ और सेवाओं पर दबाव बढ़ता है। इसलिए अतिक्रमण हटाना सरकार का कर्तव्य है, लेकिन लोकतंत्र में प्रक्रिया सुरक्षा कवच है। किसी नागरिक को बिना सुने सजा नहीं दी जा सकती। घर जरूरत है और उसे छीनने से पहले व्यक्ति को अपना पक्ष रखने का मौका मिलना चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट ने इसी सिद्धांत को याद दिलाया है। अगर किसी व्यक्ति ने अपराध किया है तो कानून के तहत उस पर मुकदमा चले और सजा मिले, लेकिन पूरे परिवार को बेघर करना और बच्चों को सड़क पर लाना न्याय नहीं, बदला है।

पिछले कुछ वर्षों में बुलडोजर कार्रवाई को प्रशासन के प्रतीक के रूप में पेश किया गया। सोशल मीडिया पर इसके वीडियो वायरल हुए और एक वर्ग ने समर्थन किया। लेकिन कानून के जानकार चेतावनी देते रहे कि इस तरीके में निर्दोष लोगों के फंसने का खतरा है।

अब प्रशासन को कार्रवाई से पहले रिकॉर्ड, सीमा और नक्शे की जांच करनी होगी। उचित समय देना होगा। यही कानून का राज है।

कार्रवाई भावना से नहीं, तथ्यों के आधार पर होनी चाहिए। बुलडोजर विकास का पर्याय नहीं हो सकता। विकास का आधार कानून और प्रक्रिया है। अब बुलडोजर के आगे कानून की किताब चलेगी, धमकी नहीं; संविधान चलेगा, इंसानियत बचेगी।

मध्यप्रदेश में गोद लेने का बढ़ा चलन

221 बच्चों को मिला नया घर, 66 प्रतिशत की वृद्धि के साथ प्रदेश बना देश में नौवां राज्य

मध्यप्रदेश में अब अनाथ और बेसहारा बच्चों के लिए उम्मीद की नई किरण दिखाई दे रही है। वर्ष 2025-26 के आंकड़े बताते हैं कि प्रदेश में गोद लेने की प्रक्रिया में 66 प्रतिशत की बड़ी वृद्धि हुई है और इस साल 221 बच्चों को नए माता-पिता का प्यार और सुरक्षा मिली है। यह आंकड़ा न सिर्फ प्रदेश के लिए गर्व की बात है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि समाज अब गोद लेने को लेकर अपनी सोच बदल रहा है। पहले जहां गोद लेना एक मजबूरी या सामाजिक दबाव का विषय माना जाता था, वहीं अब इसे एक संवेदनशील और जिम्मेदार निर्णय के रूप में देखा जाने लगा है।

केंद्रीय दत्तक ग्रहण प्राधिकरण (कारा) के जारी आंकड़ों के अनुसार, मध्यप्रदेश गोद लेने वाले राज्यों की सूची में अब नौवें स्थान पर पहुंच गया है। पिछले साल प्रदेश 13वें स्थान पर था और तब केवल 133 बच्चों को गोद लिया गया था, लेकिन एक साल के भीतर यह संख्या बढ़कर 221 हो गई है। इन 221 बच्चों में से 207 बच्चे देश के भीतर के परिवारों ने गोद लिए, जबकि 14 बच्चों को विदेश में रहने वाले भारतीय परिवारों ने अपनाया। यह आंकड़ा बताता है कि प्रदेश में न केवल गोद लेने की इच्छा बढ़ी है, बल्कि प्रक्रिया भी पहले से ज्यादा पारदर्शी और तेज हुई है। राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो देश भर में 2024-25 में 5,022 बच्चों को गोद लिया गया, जो पिछले वर्ष की तुलना में 57 प्रतिशत अधिक है। देश में सबसे अधिक 792 बच्चों को महाराष्ट्र में गोद लिया गया। इसके बाद गुजरात में 647 और तमिलनाडु में 501 बच्चे नए घरों में गए। मध्यप्रदेश 221 बच्चों के साथ इस सूची में नौवें स्थान पर है और यह उपलब्धि इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि अभी कुछ साल पहले तक प्रदेश गोद लेने के मामले में पीछे था।

इस बदलाव के पीछे कई कारण हैं। जागरूकता, सरकार और स्वयंसेवी संगठनों द्वारा चलाए गए अभियानों ने लोगों को यह समझाया है कि हर बच्चे को परिवार का अधिकार है। अनाथालयों में रह रहे बच्चे भी पढ़-लिखकर देश का भविष्य बन सकते हैं, बशर्ते उन्हें प्यार और सही माहौल मिले। कारा की ऑनलाइन प्रक्रिया और कारा पोर्टल के शुरू होने के

बाद गोद लेने की प्रक्रिया पूरी तरह ऑनलाइन हो गई है। अब माता-पिता घर बैठे आवेदन कर सकते हैं, दस्तावेज जमा कर सकते हैं और अपनी स्थिति ट्रैक कर सकते हैं। इससे पहले लगने वाला समय और भ्रष्टाचार दोनों कम हुए हैं।

सामाजिक सोच में बदलाव भी एक महत्वपूर्ण कारण है। पहले लोग गोद लेने से इसलिए कतराते थे, क्योंकि उन्हें डर रहता था कि समाज क्या कहेगा, लेकिन अब शिक्षित युवा और शहरी परिवार आगे आ रहे हैं। कई दंपती ऐसे भी हैं, जिनके अपने बच्चे हैं, लेकिन उन्होंने एक अनाथ बच्चे को भी अपनाया है, ताकि उसे भी जीवन के समान अवसर मिलें। इसी तरह कई निसंतान दंपती भी अब हिम्मत करके आगे आ रहे हैं और एक बच्चे को परिवार दे रहे हैं।

प्रदेश में गोद लेने की प्रक्रिया को आसान बनाने में महिला एवं बाल विकास विभाग और कारा से जुड़े अधिकारियों की भूमिका भी अहम रही है। भोपाल, इंदौर, जबलपुर और ग्वालियर जैसे बड़े शहरों में विशेष गोद केंद्र बनाए गए हैं, जहां काउंसलिंग से लेकर कानूनी सहायता तक सब कुछ एक ही जगह मिल जाता है। अधिकारियों का कहना है कि पहले लोग प्रक्रिया की जटिलता से घबराते थे, लेकिन अब हर चरण में उन्हें मार्गदर्शन मिलता है, इसलिए आवेदन की संख्या बढ़ी है।

हालांकि, अभी भी चुनौतियां बाकी हैं। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों और बड़े उम्र के बच्चों को गोद लेने वाले परिवार कम हैं। अधिकांश लोग नवजात या एक से तीन साल के बच्चों को ही प्राथमिकता देते हैं, जबकि छह साल से ऊपर के बच्चों को परिवार मिलने में दिक्कत आती है। इसी तरह विकलांग बच्चों को गोद लेने में भी लोग संकोच करते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि इसके लिए और जागरूकता अभियान चलाने होंगे और ऐसे परिवारों को प्रोत्साहित करना होगा, जो हर तरह के बच्चे को अपना सकते हैं।

विदेशों में गोद देने के मामले में भी सख्त नियम बनाए गए हैं, ताकि बच्चों की तस्करी न हो। कारा ने यह सुनिश्चित किया है कि विदेशी गोद केवल तभी हो, जब देश में उस बच्चे के लिए उपयुक्त परिवार न मिले। पिछले साल मध्यप्रदेश से 14 बच्चे विदेश गए। इनमें अधिकांश ऐसे बच्चे थे, जिन्हें विशेष देखभाल की जरूरत थी और विदेश में उन्हें बेहतर चिकित्सा सुविधा मिल सकी।

सामाजिक कार्यकर्ताओं का मानना है कि गोद लेना सिर्फ एक कानूनी प्रक्रिया नहीं है, यह एक भावनात्मक रिश्ता है। जब एक बच्चा पहली बार मां कहता है या पिता की उंगली पकड़कर चलता है तो वह पल किसी भी दंपती के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि होता है। प्रदेश में अब स्कूलों और कॉलेजों में भी इस विषय पर चर्चा हो रही है, ताकि आने वाली पीढ़ी गोद लेने को सामान्य रूप से स्वीकार करे।

सरकार की योजना है कि आने वाले सालों में इस संख्या को और बढ़ाया जाए। इसके लिए हर जिले में गोद केंद्र खोले जाएंगे। पंचायत स्तर पर भी जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाएंगे। साथ ही, उन परिवारों को सम्मानित किया जाएगा, जिन्होंने गोद लिया है, ताकि दूसरे लोग भी प्रेरणा ले सकें। मुख्यमंत्री ने भी कहा है कि कोई भी बच्चा अनाथ नहीं रहना चाहिए और राज्य सरकार इस दिशा में हर संभव मदद करेगी।

यह भी सच है कि गोद लेने के साथ जिम्मेदारी भी बढ़ती है। माता-पिता को यह समझना होगा कि गोद लिया बच्चा भी अपने माता-पिता की तरह ही प्यार और परवरिश का हकदार है। उसे यह एहसास नहीं होना चाहिए कि वह अलग है। इसलिए काउंसलिंग में अब इस बात पर भी जोर दिया जा रहा है कि परिवार बच्चे को उसकी पृष्ठभूमि के बारे में सही समय पर और सही तरीके से बताए।

मध्यप्रदेश में गोद लेने के आंकड़ों में आई वृद्धि एक सकारात्मक संकेत है। यह दिखाता है कि समाज अब बदल रहा है और इंसानियत अभी जिंदा है। 221 बच्चे भले ही छोटी संख्या लगे, लेकिन हर एक संख्या के पीछे एक पूरी जिंदगी है, एक सपना है और एक भविष्य है। अगर यही रफ्तार बनी रही तो आने वाले समय में प्रदेश में कोई भी बच्चा बिना परिवार के नहीं रहेगा और यही असली विकास है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

स्कूलों में बंद होगा जंक फूड!

हर निवाले की गिनती होगी, कैलोरी से तय होगा बच्चों का भविष्य

देश के स्कूलों में अब पिज्जा, बर्गर, चिप्स और कोल्ड ड्रिंक का दौर खत्म होने जा रहा है। केंद्र सरकार ने बच्चों के स्वास्थ्य को लेकर एक बड़ा और ऐतिहासिक फैसला लिया है। इसी शिक्षा सत्र से देश के सभी सरकारी, निजी और अर्द्धसरकारी स्कूलों में बच्चों को दिए जाने वाले खाने में कैलोरी और शुगर की मात्रा तय की जाएगी। स्कूल की कैंटीन, कैफे और मेस में हाई कैलोरी और हाई शुगर वाले खाद्य पदार्थों की बिक्री पर रोक लगेगी। यह नियम स्कूल गेट से 50 मीटर के दायरे तक भी लागू होगा, ताकि बाहर ठेले और दुकानों से भी बच्चे जंक फूड न खरीद सकें।

इस फैसले के पीछे की वजह बेहद गंभीर है। देश में बच्चों में मोटापा और डायबिटीज तेजी से बढ़ रही है। आंकड़े डराने वाले हैं। देश में 4.1 करोड़ बच्चे ओवरवेट या मोटापे का शिकार हैं। 6 से 19 साल की उम्र के बच्चों में 10 प्रतिशत बच्चे प्री-डायबिटीज की चपेट में हैं और 15 से 19 साल के किशोरों में यह आंकड़ा 23 प्रतिशत तक पहुंच गया है। पहले माना जाता था कि मोटापा और शुगर बड़ों की बीमारी है, लेकिन अब छोटे बच्चे भी इसका शिकार हो रहे हैं। इसका सीधा संबंध उनके खान-पान और जीवनशैली से है। सरकार ने पहली बार इस समस्या को जड़ से पकड़ने की कोशिश की है।

फूड सेफ्टी एंड स्टैंडर्ड अथॉरिटी ने 2020 में 'सेफ फूड एंड बैलेंस्ड डाइट्स फॉर चिल्ड्रन इन स्कूल' नाम से रेगुलेशन तो बनाए थे, लेकिन उसमें सिर्फ यह कहा गया था कि हाई कैलोरी और हाई शुगर वाला खाना नहीं दिया जाएगा। लेकिन कितना हाई है, इसकी कोई मात्रा तय नहीं थी। इसी वजह से स्कूल और कंपनियां बच निकलते थे। अब सरकार ने प्रति 100 ग्राम के हिसाब से ठोस और तरल पदार्थों के लिए स्पष्ट मात्रा तय कर दी है। ठोस पदार्थ में 4.2 ग्राम कैलोरी, 3.0 ग्राम शुगर और 0.625 ग्राम नमक की सीमा रखी गई है, वहीं तरल पदार्थ में 1.5 ग्राम कैलोरी, 2.0 ग्राम शुगर और 0.175 ग्राम नमक से ज्यादा नहीं होगा।

इस नियम के दायरे में देश के 24.69 करोड़ बच्चे आएंगे। यह संख्या अपने आप में बताती है कि यह फैसला कितना बड़ा है। अब मिड-डे मील से लेकर प्राइवेट स्कूलों की महंगी कैंटीन तक सभी को इन नियमों का पालन करना होगा। अगर कोई स्कूल या

वेंडर इसका उल्लंघन करता है तो उस पर सामान्य खाद्य सुरक्षा कानूनों के तहत कार्रवाई होगी। लेकिन इस बार फर्क यह है कि मात्रा तय होने की वजह से कार्रवाई करना आसान हो जाएगा। पहले अधिकारी कहते थे कि यह हाई शुगर है, लेकिन सबूत नहीं था। अब लैब टेस्ट में अगर सीमा से ज्यादा निकला तो सीधे कार्रवाई होगी।

इस फैसले का सबसे बड़ा असर स्कूलों की कैंटीन पर पड़ेगा। पिछले दो दशकों में स्कूल कैंटीन एक बड़ा बिजनेस बन गया है। मल्टीनेशनल कंपनियों ने स्कूलों के अंदर अपने ब्रांड की दुकानें खोल ली थीं। बच्चे लंच ब्रेक में पिज्जा, बर्गर, नूडल्स और कोल्ड ड्रिंक खरीदते थे। पैरेंट्स को लगता था कि महंगा खाना मतलब अच्छा खाना, लेकिन हकीकत यह थी कि एक पैकेट चिप्स और एक बोतल कोल्ड ड्रिंक में एक दिन की जरूरत से ज्यादा शुगर और नमक चला जाता था। अब इन चीजों पर रोक लगने से कैंटीन संचालकों को अपना मेन्यू बदलना होगा। उन्हें फल, सलाद, दूध, छाछ और घर जैसा खाना रखना होगा।

स्वास्थ्य विशेषज्ञ इस फैसले को स्वागत योग्य कदम मान रहे हैं। उनका कहना है कि बचपन में पड़ने वाली आदतें जीवन भर साथ चलती हैं। अगर एक बच्चा 10 साल तक स्कूल में हेल्दी खाना खाएगा तो बड़े होकर भी वह जंक फूड से दूर रहेगा। इससे न सिर्फ मोटापा कम होगा, बल्कि हृदय रोग, हाई ब्लड प्रेशर और टाइप-2 डायबिटीज जैसी बीमारियों का खतरा भी घटेगा। डब्ल्यूएचओ भी लगातार चेतावनी दे रहा है कि 2030 तक दुनिया में मोटापे की महामारी फैल जाएगी और भारत जैसे देश सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे।

लेकिन हर बड़े बदलाव के साथ चुनौतियां भी आती हैं। सबसे पहली चुनौती है निगरानी। देश में लाखों स्कूल हैं। क्या हर स्कूल की कैंटीन की जांच संभव होगी? क्या हर 100 ग्राम खाने का लैब टेस्ट कराया जाएगा? इसके लिए राज्य सरकारों को फूड सेफ्टी अधिकारियों की संख्या बढ़ानी होगी और स्कूल प्रबंधन को भी जिम्मेदार बनाना होगा। दूसरी चुनौती है जागरूकता। कई पैरेंट्स को लगता है कि बच्चा खुश है तो जो खाना चाहे, खाने दो। उन्हें समझाना होगा कि आज की थोड़ी-सी लापरवाही कल बड़े अस्पताल के बिल में बदल सकती है। तीसरी चुनौती है विकल्प देना। सिर्फ रोक लगाने से काम नहीं चलेगा। स्कूलों को सस्ता और स्वादिष्ट हेल्दी खाना उपलब्ध कराना होगा, वरना बच्चे बाहर से लाने लगेंगे।

कुछ लोग इसे माता-पिता के अधिकार में दखल भी बता सकते हैं, लेकिन यहां सवाल सिर्फ व्यक्तिगत पसंद का नहीं है। सवाल सार्वजनिक स्वास्थ्य का है। जब एक बच्चा बीमार होता है तो उसका इलाज परिवार के साथ-साथ सरकार और समाज भी करता है। इसलिए स्कूल जैसे सार्वजनिक स्थान पर न्यूनतम स्वास्थ्य मानक तय करना सरकार की जिम्मेदारी है।

इस नियम का एक सकारात्मक पहलू यह भी है कि इससे घरेलू खाने को बढ़ावा मिलेगा। जब स्कूल में पिज्जा-बर्गर नहीं मिलेगा तो मां के हाथ का पराठा और सब्जी फिर से कूल लगने लगेगा। टिफिन कल्चर वापस आएगा और बच्चों को घर के खाने का स्वाद याद आएगा। इससे किसानों को भी फायदा होगा, क्योंकि स्कूलों में फल, सब्जी और दूध की मांग बढ़ेगी।

यह फैसला सिर्फ खाने तक सीमित नहीं है। यह देश के भविष्य की नींव रखने जैसा है। आज का बच्चा कल का नागरिक है। अगर वह स्वस्थ होगा तो देश स्वस्थ होगा। सरकार का यह कदम देर से आया, लेकिन सही दिशा में आया है। अब जरूरत है कि इसे कागजों से निकालकर जमीन पर लागू किया जाए। स्कूल प्रबंधन, शिक्षक, पैरेंट्स और छात्र सभी मिलकर इसे सफल बनाएं, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ दिमाग रहता है और स्वस्थ दिमाग ही देश को आगे ले जा सकता है।

अगर हम आज बच्चों की थाली से जंक फूड हटाकर पोषण रख देते हैं तो हम आने वाली पीढ़ी को बीमारियों से बचा देंगे। यह निवेश तुरंत दिखाई नहीं देगा, लेकिन 10 साल बाद जब ये बच्चे स्वस्थ होकर देश की जिम्मेदारी संभालेंगे, तब पता चलेगा कि हर निवाले की कैलोरी गिनने का फैसला कितना दूरदर्शी था।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद भी कागजों में ही सिमटे शेल्टर होम

पुणे की चार साल की मासूम बच्ची के साथ जो हुआ, उसने पूरे सिस्टम की संवेदनहीनता को नंगा कर दिया है। सात आवारा कुत्तों के झुंड ने बच्ची पर हमला किया और उसे नोच-नोचकर जख्मी कर दिया। बच्ची के सिर पर 80 टांके आए हैं और उसकी हालत गंभीर बनी हुई है। यह घटना रविवार को एक रिहायशी इलाके में हुई, जहां लोग रोजाना इसी डर में जीते हैं कि कब आवारा कुत्तों का झुंड उनके बच्चों पर टूट पड़े। लोग चिल्लाते रहे, बचाने की कोशिश करते रहे, लेकिन तब तक देर हो चुकी थी।

यह सब सुप्रीम कोर्ट के स्पष्ट निर्देशों के बाद हो रहा है। सर्वोच्च न्यायालय ने कई बार कहा है कि शहरों में आवारा कुत्तों के लिए शेल्टर होम बनाए जाएं, उन्हें पकड़कर नसबंदी की जाए और टीकाकरण किया जाए, ताकि मानव और जानवर दोनों सुरक्षित रहें। कोर्ट ने नगर निगमों और राज्य सरकारों को समय पर फटकार भी लगाई है और रिपोर्ट तलब की है। लेकिन हकीकत यह है कि कागजों पर सब कुछ तैयार है और जमीन पर कुछ भी नहीं।

प्रशासन कोर्ट में हलफनामा देता है कि शेल्टर होम बनाए जा रहे हैं, नसबंदी अभियान चल रहा है और कुत्तों को टीका लगाया जा रहा है। लेकिन जब कोई बच्चा कुत्तों का शिकार बनता है तो वही प्रशासन आंख बंद कर लेता है या फिर बयान दे देता है कि जांच की जाएगी। पुणे की घटना के बाद भी नगर निगम के अधिकारियों ने कहा कि वे मामले को गंभीरता से ले रहे हैं, लेकिन पिछले तीन साल में कितने शेल्टर होम बने, कितने कुत्तों की नसबंदी हुई, इसका कोई हिसाब नहीं है।

यह सिर्फ पुणे की कहानी नहीं है। देश के लगभग हर बड़े शहर में यही हाल है। दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, लखनऊ और छोटे शहरों में भी आवारा कुत्तों की संख्या लगातार बढ़ रही है। सुबह स्कूल जाने वाले बच्चे, पार्क में खेलने वाले लोग और बुजुर्ग, जो टहलने निकलते हैं, सभी को डर लगता है। कुत्तों के झुंड सड़कों, कूड़ेदानों और खाली प्लॉटों पर कब्जा जमाए बैठे हैं और जैसे ही उन्हें मौका मिलता है, वे हमला कर देते हैं। इधर जम्मू के राजौरी जिले में भी ऐसी ही एक घटना ने पूरे इलाके को हिला कर रख दिया है। यहां आवारा कुत्तों के हमले के डर से प्रशासन ने दो दर्जन स्कूलों को बंद करने का आदेश दे दिया है। निजी और सरकारी दोनों स्कूलों में बच्चों की सुरक्षा को खतरा बताया गया है। सोचिए, किस हद तक हालात बिगड़ चुके हैं कि बच्चों की पढ़ाई रोकनी पड़ रही है, सिर्फ इसलिए क्योंकि प्रशासन कुत्तों को काबू में नहीं कर पा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भारत में हर साल हजारों लोग कुत्ते के काटने से रेबीज का शिकार होते हैं और सैकड़ों की मौत हो जाती

है। लेकिन इसके बावजूद नगर निगमों की प्राथमिकता में यह मुद्दा सबसे नीचे है। फंड आता है, टेंडर निकलते हैं, लेकिन शेल्टर होम नहीं बनते। नसबंदी के नाम पर खानापूर्ति होती है और टीकाकरण अभियान कागजों तक सीमित रह जाता है। जवाबदेही का सवाल सबसे बड़ा है। कोर्ट को गलत जानकारी कौन दे रहा है? क्या प्रशासन जानबूझकर आंकड़े बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा है या फिर वाकई में काम हो रहा है, लेकिन उसकी निगरानी नहीं हो रही है? दोनों ही स्थिति में दोषी कौन है? नगर निगम के अधिकारी, पशु कल्याण विभाग या फिर वह राजनीतिक नेतृत्व, जो इस मुद्दे को गंभीरता से नहीं लेता?

पशु प्रेमियों और प्रशासन के बीच की खींचतान भी इस समस्या को और बढ़ा रही है। एक तरफ लोग कहते हैं कि कुत्तों को मारना नहीं चाहिए, दूसरी तरफ आम आदमी कहता है कि पहले इंसान की जान बचाओ। दोनों पक्षों की बात अपनी जगह सही है, लेकिन बीच का रास्ता यही है कि कोर्ट के आदेश के अनुसार वैज्ञानिक तरीके से नसबंदी, टीकाकरण और शेल्टर होम बनाए जाएं। लेकिन यह काम कौन करेगा? जब तक फंड का दुरुपयोग होता रहेगा और अधिकारी फाइलों में उलझे रहेंगे, तब तक कुत्ते भी बढ़ते रहेंगे और हादसे भी होते रहेंगे। पुणे की बच्ची के पिता का कहना है कि उन्होंने कई बार नगर निगम में शिकायत की थी कि उनके इलाके में कुत्तों का झुंड रहता है, लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। घटना के दिन भी कुत्ते गली में घूम रहे थे और किसी ने ध्यान नहीं दिया। अब सवाल यह है कि अगर शिकायत के बाद भी कार्रवाई नहीं होती तो फिर शिकायत तंत्र का क्या फायदा? राजौरी में स्कूल बंद करने का फैसला प्रशासन की नाकामी का सबसे बड़ा सबूत है। इसका मतलब है कि प्रशासन ने हार मान ली है। वह कुत्तों को नियंत्रित नहीं कर सकता, इसलिए बच्चों को घर बैठा दो। यह कैसी व्यवस्था है, जहां इंसानों को अपनी सुविधा छोड़नी पड़ रही है, ताकि जानवरों को खुला छोड़ा जा सके?

सुप्रीम कोर्ट इस मामले में सख्त रुख अपनाए। उन अधिकारियों पर कार्रवाई हो, जो झूठे हलफनामे दे रहे हैं। हर शहर में समय सीमा तय करके शेल्टर होम बनाए जाएं। नसबंदी और टीकाकरण का ऑडिट हो और हर महीने रिपोर्ट कोर्ट में पेश हो। साथ ही आम जनता को भी जागरूक करना होगा कि वे कूड़ा खुले में न फेंकें, क्योंकि कूड़े के ढेर ही कुत्तों को आकर्षित करते हैं। पुणे की बच्ची के 80 टांके और राजौरी के बंद स्कूल हमें आईना दिखा रहे हैं। यह आईना प्रशासन की लापरवाही का है। यह आईना उस व्यवस्था का है, जो कोर्ट के आदेश को भी मजाक समझती है और यह आईना हम सबका भी है, क्योंकि जब तक हम सवाल नहीं पूछेंगे, तब तक जिम्मेदार लोग जिम्मेदारी नहीं लेंगे।

अगर अब भी आंखें नहीं खुलीं तो अगली खबर किसी और शहर की किसी और मासूम की होगी और तब भी हम यही पूछते रह जाएंगे कि जिम्मेदार कौन है? इसलिए अब भाषण नहीं, काम चाहिए। अब फाइल नहीं, शेल्टर होम चाहिए और अब वादे नहीं, सुरक्षा चाहिए। क्योंकि हर बच्चे को सड़क पर सुरक्षित चलने का अधिकार है और उस अधिकार की रक्षा करना सरकार और प्रशासन दोनों का कर्तव्य है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)